भाजपा की चुनावी गाड़ी टॉप गियर में, कांग्रेसी अभी भी घुर्र-घुर्र मोड में

फ़रीदाबाद (म.मो.) बेशक यहां मतदान 12 मई को होने वाला है लेकिन भाजपा का संगठन इतना चाक-चौबंद एवं चुस्त-दुरूस्त है कि चुनाव की घोषणा होते ही चुनावी काम में जुट गया। सप्ताह भर में इनके संगठनरूपी मशीन टॉप गियर में आकर पूरी गति से दौड़ने लगी है। बेशक इसमें आरएसएस का योगदान सबसे अधिक है। उसके स्वयंसेवक तो मानो सुसंगठित सेना फ़ौज की भांति बस केवल आदेश का इन्तज़ार कर रहे थे। आदेश मिलते ही बिना कोई समय गंवाये मतदाताओं को बांधने में जुट गये।

क्षेत्रवार चुनाव का खाका पहले से ही तैयार था। वोटर लिस्टें पहले से ही इनके पास हैं। हर क्षेत्र के हर बूथ का पूरा बही-खाता इनके पास है। प्रत्येक बूथ पर आने वाले मतदाताओं को बांधने एवं साधने के लिये एक-एक कार्यकर्ता को 100 से 200 तक मतदाता सौंपे गये हैं। इन कार्यकर्ताओं पर नज़र एवं तालमेल रखने के लिये एक बूथ इंचार्ज रखा गया है। ये कार्यकर्ता अपने हिस्से के मतदाताओं के पास अभी से जाने लगे हैं। उनकी राजनीतिक स्थिति एवं समझ को टटोलने के साथ-साथ उन्हें अपनी पार्टी के लिये मतदान करने को प्रेरित कर रहे हैं।

जब मतदाता उम्मीदवार घोषित होने की बात कहते हैं तो कार्यकर्ता का सधा हुआ एक ही जवाब होता है कि वोट किसी उम्मीदवार के लिये नहीं बल्कि पार्टी के लिये है जिसका नेता नरेन्द्र मोदी है। उन्हीं को दोबारा प्रधानमंत्री बनाने के लिये पार्टी को मत देना है उम्मीदवार चाहे कोई भी

हो। अपने इस अभियान में कार्यकर्ता भाजपा सरकार की झूठी-सच्ची उपलब्धियां भी गिनवाते हैं। वैसे तो कोई ऐसी उपलब्धि है नहीं जो गिनाई जा सके, फ़िर भी वे याद दिलायेंगे कि फलां दिन मुख्यमंत्री खट्टर ने रसोई गैस के सिलेंडर बांटे थे न, तुम्हें इस बार नहीं मिला तो अगली बार मिल जायेगा। 'आयुष्मान भारत' का गोल्डन कार्ड बांटा जा रहा है जिससे पांच लाख तक का मुफ़्त इलाज होगा। बेशक आज तक न तो ये कार्ड बने और न किसी का इलाज हुआ, फ़िर भी दिखावे के लिये लोगों को कुछ नाम बताये जाते हैं कि फ़लां-फ़लां के कार्ड बन गये हैं तुम्हारा भी जल्द ही बनवा दिया जायेगा। ऐसे ही अन्य छोटे-मोटे कामों की दुहाई के साथ-साथ वोटर को सत्ता का भय भी दिखाने का प्रयास कार्यकर्ताओं द्वारा किया जाता है। बार-बार दबाव देने से वोटर काफ़ी हद तक प्रभावित हो ही जाते हैं। उसके लिये जरूरत पड़े तो अन्य तमाम तरह के हथकंडे भी अपनाये जाते हैं।

सत्तारूढ होने के नाते पार्टी कार्यकर्ता सरकारी मशीनरी का सहारा लेने से भी गुरेज नहीं कर रहे। सरकारी दफ़्तरों में अटके लोगों के काम करा कर भी उन्हें अपने साथ बांधा जाता है। इन्हीं सरकारी अफ़सरों की सहायता एवं सहयोग से आचार संहिता का उल्लंघन करके होर्डिंग व बैनर आदि लगाने से भी कार्यकर्ता कोई परहेज नहीं करते। इसी लिये चुनावों से पहले काफ़ी बड़े पैमाने पर अपनी पसंद के अफ़सरों की तैनातियां कराई जाती हैं। विरोधी पक्ष जब तक उल्लंघन की शिकायत करता है, धीरे-धीरे किसी नकली सी कार्यवाही का भरोसा मिलता है तब तक काफ़ी मकसद हल हो चुका होता है।

दूसरी ओर मुख्य विपक्षी दल की भूमिका में कांग्रेस पार्टी है जिसकी चुनाव मशीनरी का कहीं अता-पता ही नहीं, चलने व दौड़ने की तो बात ही क्या? और तो और बीते करीब चार-पांच साल से पूरे राज्य में इसके संगठन को जैसे लकवा मार गया हो। आज की तारीख में किसी भी ज़िले का न तो कोई पार्टी अध्यक्ष है न ज़िला कार्यकारिणी। राज्य के पार्टी अध्यक्ष अशोक तंवर तथा पूर्व मुख्यमंत्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा के बीच न केवल 36 का आंकड़ा है बल्कि एक दूसरे को फूटी आंख नहीं सुहाते। मौका मिलते ही एक दूसरे की पिटाई तक करने पर उतारू हो जाते हैं। इसी चक्कर में आज तक ज़िला स्तरीय संगठन खड़े नहीं किये जा सके। दोनों गुट एक दूसरे की टांग खींचने मात्र से ही संतुष्ट नहीं बल्कि तोड़ने की ताक में रहते हैं। इन हालात में पार्टी टिकट को लेकर भी भीतरी घमासान का होना तय है। जिस उम्मीदवार पर एक गुट ने हाथ रख दिया तो दूसरा गुट उसकी टांग तोड़ना अपना परम धर्म समझता है।

उम्मीदवार चाहे कोई भी बने, चुनाव जीतने के लिये बूथ एवं मुहल्ला स्तर के कार्यकर्ताओं का होना बहुत ही जरूरी होता है। पैसे के बल पर बड़ी एवं खूबसूरत रैलियां तो की जा सकती हैं, पोस्टर एवं बैनर तो लगाये जा सकते हैं लेकिन भीड़ को वोटों में बदलने के लिये कार्यकर्ताओं की सदैव विशेष भूमिका रहती है। संगठन के अभाव में कांग्रेस के पास इनका नितांत अभाव है।

बेशक मात्र जनता भाजपा कुशासन से त्रस्त है, उनके झूठे जुमलों व भड़काऊ एवं उन्मादी कृत्यों से दुखी हैं, जनता इनसे छुटकारा पाना भी चाहती है परन्तु जाये तो जाये कहां। बीते पांच वर्ष में कृष्णपाल गूजर व इनके मामा ने जिस तरह पूरे शहर को लूटा है, पुलिस एवं प्रशासन का जिस तरह से खुला दुरुपयोग किया है, उसे देखते हुए जनता किसी कीमत पर उन्हें दोबारा अपना नुमायंदा नहीं बनाना चाहती परन्तु वोटों की इस राजनीति में नोटों व सत्ता के दुरुपयोग से निपटने के लिये विकल्प की आवश्यकता है, उसका सर्वथा अभाव नज़र आ रहा है ऐसे में भाजपा एवं कृष्णपाल के कुशासन से मुक्ति पाना कोई बहुत सरल नहीं होगा।

इन दोनों प्रमुख दलों के अलावा राज्य स्तरीय दल भी इस दंगल में घमाचौकड़ी मचा कर अपने लिये कुछ न कुछ हासिल करने का प्रयास तो करेंगे ही जिसका सीधा लाभ भाजपा को होना तय है।

"इतिहास पुरुष" बन चुके हैं नरेंद्र मोदी!

सत्येंद्र पीएस

2019 के लोकसभा चुनाव के कार्यक्रम की घोषणा हो चुकी है। तरह-तरह के कयास शुरू हो गए हैं। परिवार व व्यक्ति पूजा से दूर रहने का नारा देने वाला आरएसएस और उसकी राजनीतिक इकाई भाजपा इस चुनाव में नरेंद्र मोदी के सहारे है। आरएसएस-भाजपा का अस्तित्व और पहचान नरेंद्र मोदी बन चुके हैं और उनके अलावा इन संगठनों में कोई नेता दूर-दूर तक नजर नहीं आता है। मोदी का कद आरएसएस-भाजपा से बहुत विराट हो चुका है।

नरेंद्र मोदी एक ऐसे नेता रहे हैं जो भारतीय राजनीति में आए और छा गए। यूं तो माना जाता है कि मोदी बचपन में ही पत्नी और घर द्वार छोड़कर आरएसएस में आ गए थे, लेकिन उनका बहुत बड़ा कद कभी नहीं रहा। वह लाल कृष्ण आडवाणी, मुरली मनोहर जोशी आदि के पीछे घूमने वाले और अगर उन लोगों की फोटो खिंच रही हो तो फोटो फ्रेम में किसी तरह से सिर घुसा देने वाले नेता बने रहे।

आरएसएस ने भी उनका इस्तेमाल विभिन्न बड़े संघी नेताओं के यहां पत्र पहुंचाने, उन्हें स्टेशन तक छोड़ने, स्टेशन से लाने, उनके खाने-पीने और रहने का इंतजाम करने तक ही सीमित रखा। आरएसएस में उन्हें कभी बड़ा पद नहीं मिल सका। भाजपा में मोदी जरूर दिल्ली के अशोक रोड स्थित कार्यालय में छोटी मोटी जगह बनाने में कामयाब रहे। मनुवादी-सवर्णवादी या ब्राह्मण-बनिया पार्टी के रूप में पहचान वाले संगठनों भाजपा-आरएसएस में मोदी की कोई खास पूछ कभी नहीं रही थी।

गुजरात के छत्रपों की आपसी ल ?ाई में उन्हें भाजपा ने कमजोर नेता समझकर कुछ महीने के लिए मुख्यमंत्री बनाया। इस तरह की लड़ाइयों में कमजोर नेताओं को मौका मिल जाता है और दोनों पक्षों में सहमति बन जाती है, क्योंकि दोनों नेता यह सोचते हैं कि यह व्यक्ति अपनी जगह कभी नहीं बना पाएगा। अगर क्रिकेट की भाषा मे कहें तो मोदी को नाइट वाचमैन के रूप में गुजरात का मुख्यमंत्री बनाकर भेजा गया था, जिसके कि शाम की कम रोशनी में आउट हो जाने पर भी अगले दिन के टेस्ट मैच पर कोई असर न पड़े।

नरेंद्र मोदी वही भूमिका निभा भी रहे थे। उन्हें साफ था कि कुछ महीने तक मुख्यमंत्री पद इंज्वाय करने के बाद हट जाना है और फिर जो भी नेता गुजरात में प्रभावी होगा, उसे भाजपा सत्ता सौंप देगी। गुजरात का सांप्रदायिक दंगा मोदी के जीवन का टर्निंग प्वाइंट था। गोधरा में अयोध्या से लौट रहे हिंदुओं को जिंदा जला दिया गया। किसी भी राज्य में ऐसी घटना होने पर सबसे पहले मुख्यमंत्री की कुर्सी जाती है, क्योंकि रेलवे में जिस भी राज्य में कोई इस तरह की वारदात होती है तो राज्य की कानून व्यवस्था को जिम्मेदार माना जाता है। इस घटना के बाद मोदी मुख्यमंत्री के रूप में न पेश आकर एक आम हिंदू नागरिक बन गए। उन्होंने कानून व्यवस्था भगवान भरोसे छोड़ दिया। केंद्र में भाजपा की सरकार थी और राज्य सरकार सुरक्षित। राज्य में भयानक दंगे हुए, जितने हिंदू गोधरा अग्निकांड में मारे गए थे, उससे कहीं ज्यादा हिंदू दंगों में मार दिए गए। लेकिन मोदी की राजनीति चमक चुकी थी और वह हिंदू रक्षक के रूप में स्थापित हो गए।

उसके बाद उन्होंने राज्य की राजनीति में स्वतंत्रता के बाद से ही काबिज रहे सबसे अहम समूह पटेलों की राजनीति खत्म कर दी। मोदी की अहम मंत्री आनंदीबेन पटेल के बारे में तरह-तरह की चर्चाएं चलती रहीं। पटेलों की राजनीति धीरे धीरे करके जाती रही। इतना ही नहीं, राज्य में भूमिधर किसान पटेलों की जमीनें छीनी जाती रहीं और यह तबका सड़क पर आ गया। खाने के लाले पड़ गए। इसके बावजूद हिंदुत्व की राजनीति ऐसी चली कि पटेल दोयम दर्जे में भी मोदी के साथ खुश रहे। इसके अलावा गुजरात के कारोबारियों के पैसे ने मोदी को चुनाव में और प्रवासी पटेलों ने विदेश में छवि चमकाने में मदद की। मोदी आगे बढ़ते गए।

2014 के चुनाव के पहले अपने गुरु लालकृष्ण आडवाणी को धकेलकर मोदी प्रधानमंत्री पद के संभावित दावेदार बने। 10 साल की कांग्रेस की सत्ता और अन्ना आंदोलन से भ्रष्टाचार की जननी के रूप में प्रचारित सरकार पर हमले बोलने में मोदी को मदद मिली। वह खुद को ओबीसी नेता के रूप में भी पेश करने में सफल रहे, जिससे यूपी और बिहार में उन्होंने मजमा लूट लिया। मोदी का मंच पर चींखना, चिल्लाना, गंदे और घटिया आरोप लगाना, हाथ चमकाना, आंख मटकाना, विरोधी दलों के नेताओं का चरित्र हनन, मंच से महिलाओं पर ओछी टिप्पणियां करना, बगैर तथ्यों के ऊल जुलूल बातें करना आम लोगों को लुभाने लगा।

यह भारत के इलीट क्लास ने कभी पसन्द नहीं किया। यहां तक कि तमाम पढ़े लिखे या गैर पढ़े लिखे लोगों ने भी इसे कभी तार्किक नहीं माना। लेकिन धार्मिक, जातीय, भाषाई, कुंठाओं में डूबी और चौराहों पर निरर्थक हांव हांव करने वाले एक बड़े तबके को मोदी में अपना अक्स नजर आने लगा। ऐसे लोगों ने मोदी से खुद को इस कदर जोड़ा जैसे वे खुद ही प्रधानमंत्री बनने जा रहे हों। मोदी 1984 के बाद पहली बार एक पार्टी की बहुमत वाले दल के प्रधानमंत्री बने। मोदी में अपनी छवि देखने वाले लोगों ने उनके 5 साल के केंद्र सरकार के कार्यकाल के दौरान भी लोगों को गालियां देने, ओछे आरोप लगाने, और मोदी को समर्थन देने में अपनी पूरी ऊर्जा लगा दी। निःस्वार्थ भाव से यह काम करने वाले लोग भक्त कहे जाने लगे।

एक सामान्य परिवार से निकले नरेंद्र मोदी करीब 2 दशक से भारत की राजनीति पर छाए हैं। मोदी जो कहते हैं, वह कभी नहीं करते। उन्होंने हिंदू होने का तमगा पहना, लेकिन उन्होंने हिंदू के हित में कभी काम नहीं किया। सवर्ण इलीट हिंदुओं के अलावा देश की 85 प्रतिशत आबादी को उन्होंने कभी महत्त्व नहीं दिया। मोदी के भाषणों में रक्षा क्षेत्र सबसे आगे रहता है, लेकिन उनके कार्यकाल में रक्षा क्षेत्र के बजट में कोई उल्लेखनीय बढ़ोतरी नहीं हुई। सैन्य साजोसामान या सेना व अर्धसेना को कोई अलग सुविधा देने पर कभी विचार नहीं किया। रोजगार देने का वादा किया, लेकिन रोजगार पूरी तरह बर्बाद कर दिया और देश में पिछले 40 साल की तुलना में सबसे ज्यादा बेरोजगारी है। नोटबंदी ने कुटीर व लघु उद्योगों की कमर तोड़ दी। रेलवे, मेट्रो का किराया रिकॉर्ड स्तर पर पहुंच गया। बिजली उत्पादन कंपनियों के पास कोयला नहीं है और कंपनिया बैंकों का 2 लाख करोड़ रुपये लेकर बैठी हैं।

अब मोदी एक बार फिर आक्रामक प्रचार और पाकिस्तान को ललकारकर हिंदू-मुस्लिम ध्रुवीकरण के सहारे चुनावी मैदान में हैं। उनके भाषणों की कई कुंतल किताबें अभी हाल ही में सरकारी पैसे से छपकर आ गई हैं। उनके भाषणों को कभी भविष्य के विकसित भारत में सुना जाएगा तो देश की अगली पीढ़ी सोचने को मजबूर होगी कि हमारे पूर्वजों ने कभी ऐसे नेता को भी देश की सत्ता सौंप दी थी।

मोदी के दौर को बिल्कुल उसी तरह से याद किया जाएगा जैसे आज के लोग सती प्रथा, जौहर प्रथा, बच्चियों के पैदा होने के बाद मिट्टी के बर्तन में बंद करके जमीन में गाड़ देने की प्रथाओं को याद करते हैं और सोचते हैं कि क्या हमारे पुरखे कभी इतने मूर्ख हुआ करते थे?